महर्षि नारद जी

का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

प्रकाशदेव.

महर्षि नारद जी

का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

श्रद्धेय प्रकाशदेव जी

प्रचारक ब्राह्मधर्म्म द्वारा

प्रकाशित

बाम्बे मैशीन प्रेस लाहौर में दुनीचन्द

प्रिण्टर के प्रबन्ध से छपी।

प्रथम बार १००० } नवम्बर सन् १९०९ ई० ब्राह्म संवत् ८० { मूल्य -)

महर्षि नारद जी
का
* संक्षिप्त जीवन चरित्र *

भारत-वर्ष के हिन्दुओं में से ऐसे बहुत थोड़े होंगे, जिन्हों ने श्री महर्षि नारद जी का नाम न सुना हो। श्री महर्षि नारद जी जिस विशेष बात के लिये हमारे देश में प्रसिद्ध हुए हैं और भक्ति भाजन होकर हमारे आदर और प्रतिष्ठा के योग्य बने हैं, इसका कारण उनका भक्त-जीवन है। यह महात्मा महर्षि नारद जी पहिले कौन थे और क्यों हम इनका इतना उच्च आदर करने लग गये हैं और किस प्रकार इन्हें ऐसी अनन्या और निरन्तर परमा भक्ति प्राप्त हुई थी इसका जानना भी हम सबों को बहुत ही आवश्यक है। इस कारण हम संक्षेप से कुछ लिखते हैं॥

श्री नारद जी एक मुनीश्वर के दासीपुत्र थे इन्हों ने बचपन में ही गाने में बहुत उत्तम सामर्थ्य उत्पन्न कर

ली थी। इनका स्वभाव पहिले से ही सुशील और धार्म्मिक था। सामान्य खेल कूद की ओर नहीं जाता था, चुप चाप एकान्त बैठ रहने का था। जिस मुनीश्वर के आश्रम पर इनकी माता दासी की भांति टहिल सेवा किया करती थी उनके आश्रम पर चौमासे में और भी कई महात्मा भक्त सन्त आन ठहरते थे, क्योंकि भारत में जहां छयों ऋतु अपना २ स्वभाव दिखा जाती हैं सन्त लोग वर्षा ऋतु में एक स्थान में बैठ कर भगवद्-भजन स्मरण और सत्संग किया करते थे, जप तप भजन पाठ और भगवद्-ध्यान में काल बिताया करते थे। इस कारण भक्त शिरोमणि श्री नारद जी भी अपनी माता की भांति सन्तसेवा और भक्तशुश्रूषा करने में लगे रहते और जब २ सन्तों का सदुपदेश होता, सुनते, और हरि गुण गाते थे। नारद जी को शान्तस्वभाव, भजन-परायण और सुशील जान कर महात्मा भक्त जन, आश्रमवासी मुनि-गण इनको वात्सल्यभाव से देखते और प्यार करने लगे थे, और कभी २ इनकी अवस्था के अनुसार सत् उपदेश भी दिया करते थे। श्री नारद जी, जिनका इस साधु मण्डली

के साथ रहते २ जो एक अपूर्व आध्यात्मिक सम्बन्ध होगया था, उनका पीछा नहीं छोड़ते और हरि गुण चर्चा के बिना पल भर भी नहीं बिताते थे। श्री नारद जी का अपना कथन है कि मैं ज्यों २ उनके सुन्दर उपदेशों को सुनता और भक्ति भाव से भरे हुए कीर्तनों को श्रवण करता, मेरा चित्त हरि कीर्तन करते २ हरि की ओर ऐसा खिंचा कि खाते पीते सोते उठते बैठते अपने कीर्तनके साधन वीणा-वाद्य (बीणाका बाजा) को कभी न छोड़ता और हरि गुण कीर्तन के सिवा कुछ नहीं भाता था। एक दिन की बात है कि किसी वन में फिरता २ उसकी विचित्र अद्भुत सृष्टि के गुण गाता २ एक अति विशाल बड़ के पेड़ तले हो बैठा, और महात्माओं के उपदेशानुसार आसन लगाय उनकी बताई हुई युक्ति से भगवत्-स्वरूप चिन्तन में बैठगया। शनैः २ उस रूप का (जैसा मैंने महात्माओं से सुना हुआ था) दर्शन पाया, मन शान्त हुआ, व्याकुलता सब दूर हुई और सब चिंता मिट गई कुछ और ही अवस्था पलट गई।

रूपं भगवतो यच्च मनःकान्तं शुचावहं।

अवश्यं सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद् दुर्मना इव ॥

आंखें खुलीं तो सब ओर, और सब वस्तुओं में वही प्रकाश दीखने लगा। नारद जी का कथन है कि चाहे मनुष्य कैसे ही पुण्यों के पवित्र बीज लेकर क्यों न जन्मा हो, जब तक वह उपयुक्त सम्बन्धों में (जो सम्बन्ध कि उन पुण्यों के पवित्र बीजों को पवित्र मीठी वासना रूपी पवन, और सदुपदेश रूपी किरण, और शुद्ध भाव रूपी जल देकर उस बीज को फूटने की शक्ति देते हैं) नहीं बंधता, भीतरी स्वच्छ भावों को प्रकाश नहीं कर सकता। किसी २ समय मनुष्य अच्छे २ उत्तम धर्म्म-बीजों को लेकर उत्पन्न तो होता है परन्तु ज्यों २ उन बीजों के उभारने और बढ़ाने की सामग्री नहीं मिलती, त्यों २ बीज दबा पड़ा रहता है कभी नहीं उभरता और बढ़ता। यदि उस अवस्था में उत्तम सामग्री के सिवा बुरी कुसंग रूपी सामग्री मिल जाय, तो बुरी वासनाओं के बढ़ जाने से बुराइयां उत्पन्न होने लगती हैं और फिर ऐसी दशा भी आजाती है कि वह बुराइयां अपना फल दिखाने लगती हैं, और प्रतीत होने लगता है कि यह

मनुष्य कभी नहीं सुधरेगा, और पाप मार्ग से नहीं फिरेगा। परन्तु इसके उलट ऐसा देखा गया है कि वही व्यक्ति कुछ काल पीछे तुरन्त पलटा खाकर सत्पुरुषों में गिना जाता है। पहिले अपवित्र जीवन को छोड़ पवित्र और शुभमार्ग को ग्रहण कर लेता है। ऐसे ही और एक बुरा मनुष्य जिस के भीतर अच्छे भावों का किंचित् मात्र भी बीज रह गया था सच्चे भक्त और पवित्र साधु संग से वह बीज उभरा है और वृक्ष बन कर उसने सुख और शान्ति के फल दिये हैं। कभी २ ऐसा भी हुआ है कि जिसके भीतर अच्छे भावों का बीज सड़ ही गया है वह सज्जन महात्मा साधु भक्तों के उच्च जीवन को देख उपदेश-वाक्य सुन चाल ढाल देख उन में श्रद्धा और भक्ति करने के पलटे उन से घिन करता हुआ परे २ हटता है। यहां तक कि वह न तो उनकी ओर खिचता और न ही उन का सत्संग चाहता है, प्रत्युत उसके अंतःकरण में अहंकार अधिक होजाने से उलटा उन महात्माओं के विषय में झूठी २ बातें घड़ने और फैलाने लगता है। अपने से बड़ा और ऊंचा जानने के पलटे बहुत उपायों से उन्हें

सताने और दुःख देने में अपना सुख मानने लगता है। क्योंकि मनुष्य का भला और बुरा होना उसके मन के भावों के भले बुरे होने पर ही निरभर करता है। इस लिये जब लों किसी के भीतर अच्छे भावों का बीज बना रहे तब लों उच्च जीवन के घर की नीम डाल सकता है, नहीं तो फिर यही उक्त दशा होनी सम्भव है। क्योंकि श्री महर्षि नारद जी के हृदय के भीतर अति उत्तम भावों के बीजों का भंडार भरा हुआ था, इस कारण उनका मन साधु संग, भक्त सेवा और एकान्त में भगवत् उपासना की ओर अधिक से अधिक खिचा, और यह पवित्र योग ज्यों २ दृढ़ होता गया त्यों २ भक्ति भाव के पवित्र अंकुर ने वृक्ष बनकर वह सुख शान्ति दी कि झट आत्मप्रसाद प्राप्त हुआ वैराग्य की नीम बंधी और शनैः २ वह अवस्था आ गई "तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्य-स्मात् सर्वास्मात् यदिदं किञ्च" जब स्वार्थत्याग और परोपकार की ओर उलझे, आत्मप्रसाद यहां तक प्राप्त हुआ कि मुख से यही उच्चारण होने लगा "आनन्द रूपममृतं यद्विभाति" महात्माओं ने नारद जी की

जब यह दशा देखी, तो आज्ञा दी कि अब तुम एक स्थान को छोड़, फिरकर जगत् का उद्धार करो। यह आज्ञा पाकर नारद जी ने बाहर निकल देश विदेश घूमकर नाम प्रचार की मति प्रकाश करदी। नारद जी वृद्ध माता के एक ही पुत्र होने के कारण उनकी सेवा नहीं छोड़ सकते थे अन्त को माता जी को भी साथ ही लेना पड़ा और हरिनाम प्रचार में कटिबद्ध हुए। प्रथम तीर्थ यात्रा के लिये माताजी समेत घर से निकले अनेक नगर ग्राम, तीर्थ मन्दिर, बन उपबनों में वीणा द्वारा हरि गुण गाते हुए फिरने लगे, कि एक बाग में जो पहुंचे रात के समय एक वृक्ष के नीचे विश्राम था, माता जी को एक सांप ने डसा, और डसतेही देह के भीतर विष का संचार जो हुआ उससे परलोक सिधारीं।

नारद जी माता का मृतकश्राद्ध (और्द्धदेहिक) कर निश्चिन्त हो स्वतन्त्र नाम प्रचार करते हुए काल व्यतीत करने लगे नारद जी कहते हैं मैं इस भांत यात्रा करता २ जब एक बार किसी गव्हर बन में जा निकला तो एक सरोवर दिखाई दिया और पास ही उसके एक अत्यन्त हराभरा

विस्तृत पीपल का पेड़ भी दीख पड़ा, ऐसे रमणीय अति उत्तम स्थान को देख मन में आई कि यह अत्यन्त दिव्य स्थान भगवान की उपासना के योग्य है, बैठ गया और सरोवर में स्नान करके उस पीपल के वृक्ष के नीचे एक पत्थर की स्वच्छ और पवित्र चटान पर बैठ तकान दूर किया और मुनीश्वरों की उपदिष्ट रीति से उपासना के भीतर ध्यान योग लगाया। ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे आव्हान करते ही आनन्दस्वरूप भगवान मेरे हृदय सिंहासन पर आन विराजे हैं, मुझे प्रतीत हुआ कि अब मैं इस मृतक संसार में नहीं हूं, किन्तु परम आनन्दधाम में पहुंचा हुआ हूं जहां किसी का भय नहीं, चारों ओर आनन्द स्रोत बह रहे हैं॥

हृदय के भीतर एक ऐसा दैवी प्रकाश आया जिस ने चित्त को ऐसा उजाला दिया कि पहिले कभी नहीं था। नारद जी कहते हैं कि यह वह दिन था जो जीवन में पहिले एक वार आकर फिर कभी नहीं आया था। प्रतीत हुआ कि भगवान् हृदयनाथ मेरे बुलाये हुए हृदय में आन विराजे हैं।

"आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि"

मेरे आव्हान करते ही मेरे चित्त में आकर मुझे दर्शन दे रहे हैं। कुछ काल इसी अवस्था में बैठा रहा अन्त में धीरे २ वह दशा तो न रही यह स्वर्गीय दृश्य सहजे २ लोप हो गया परन्तु मुझे भीतर ऐसा प्रतीत होने लगा कि जबलों जीऊंगा, इस अवस्था को कभी नहीं भूलूंगा। देह कांप उठा, पुलकावलि उठने लगी, आनन्द स्रोत बहने लगा, प्रतीत हुआ कि अब मैं स्वर्ग राज्य में चला गया हूं। पीछे मुझे यह निश्चय हुआ कि जबलों वैराग्य और हृदय की पवित्रता के साधनों के द्वारा भीतर की मलिनता को भली भांति दूर न किया जाय, और मोह के बन्धन न टूटें और मन की चंचलता दूर न हो,तबलों यह स्वर्गीय दृश्य प्राप्त नहीं हो सकता। इस कारण अब चित्त शुद्धि,पवित्रता के साधन और वैराग्य के पीछे पड़े और इसी प्रकार के उपदेश देने लगे। स्वतन्त्र तो थे ही, निष्काम साधु सेवा का आरम्भ किया, जिस से प्रेम भाव और भी बढ़ा, ज्यों२ प्रेम भाव बढ़ा भगवद् भक्ति के गुण वर्णन और भगवान् की महिमा और नाम प्रचार के काम

में लग गये,उन्मत्तों की भांति रोते, कभी हंसते,कभी गाते, कभी बीणा बजाते और कभी नाचने लगते थे।

अन्त को वह समय भी आगया कि जिस से उनका चित्त शान्त और निर्मल हो गया, और स्वतन्त्र हो जाने मे औरों के साथ विशुद्ध प्रेम बढ़ने लगा और ज्यों २ उनका यह प्रेम बढ़ने लगा त्यों २ उनके मन में प्रेम भक्ति बढ़ते २ यहां तक पहुंची कि उसीके प्रचार का उत्साह "यत्परोनास्ति" हुआ और कुछ काल पीछे अन्तको वह समय भी आगया कि इनका चित्त शान्ति और प्रेम रसमें सदैव भरपूर रहने लगा। जब श्री नारद जी ने नव जीवन के साथ यह अवस्था पाई तो निर्भय हो प्रभू के गुण वर्णन करने के लिये बीणा हाथ में लेकर मीठी तान और स्वर से निज भक्ति-भाजन का नाम औरोंतक पहुंचा जगत् के कल्याण साधन के अर्थ चारों ओर नाम दान देकर कृतार्थ करने लगे।

महर्षि नारद जी इस भक्त जीवन से उस अवस्था में पहुंचे जो उनके नीचे लिखे भक्ति सूत्रों से प्रकट होती है, और साथ दूसरे भक्त आचार्यों के कहे हुए सूत्र भी

दिखाये हैं ।

१ तल्लक्षणानि चोच्यन्ते नानामतभेदात् ।

अर्थ—भक्ति के स्वरूप वर्णन में आचार्यों के नाना मत हैं ।

२—पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः ।

अर्थ—पराशर जी का मत है कि पूजा, भजन कीर्तन, भगवान् के गुण वर्णन करने में प्रेम करना भक्ति है ।

३—आत्मन्यविरोधेनेति शाण्डिल्याचार्यः ।

अर्थ—शाण्डिल्य आचार्य्य का मत है कि आत्मा में जो स्वभाविक भाव उत्पन्न होता है उसके विरुद्ध कुछ न करना यही भक्ति है ।

४—नारदस्तु तदर्पिताखिलाचाराद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ।

अर्थ—नारद जी कहते हैं कि सारे आचार विचारों को उसी परमेश्वर पर छोड़ देना और भूल जाने से व्याकुल हो जाना भक्ति है ।

५—सातु विषयत्यागात्सङ्गत्यागाच्च ।

अर्थ—वह (प्रेम रूपा) भक्ति संसार के विषयों के त्याग से और दुष्टों के संग के त्याग से प्राप्त होती है ।

नारद जी ।

६—नित्यदास्यं नित्यकान्ताभाजनात्मकं प्रेमएव कार्यं प्रेमएवकार्यमिति ।

अर्थ—सदैव दास, वा प्यारी स्त्री संग प्रेम की भांति (परमेश्वर) से प्रेम करना केवल प्रेम ही करना चाहिये ।

(नारद)

७—भक्तिशास्त्राणि मननीयानि तदुद्बोधककर्माणि करणीयानि ।

अर्थ—भक्ति भावके उभारने वाले शास्त्रों का मनन (विचार) करना चाहिये । वा भक्ति उत्पन्न करने वाले काम करने चाहियें (नारद) ।

८—सुखदुःखलोभेच्छालोभादिभिस्त्यक्ते काले प्रतीक्षमाणेनार्द्धक्षणमपि व्यर्थं न नेयम् ।

सुख दुःख इच्छा लोभ आदि के व्यर्थ विचार से पृथक रहकर आधे क्षण काभी प्यारे के स्मरण विना खोना

उचित नहीं (नारद)।

९–अहिंसा सत्यशौचदयास्तिक्यादिचरित्राणि पालनीयानि।

अर्थ–अहिंसा, सत्य दया शुचिता और आस्तिकपन आदि चरित्रों (कर्मों) को पालन करना उचित है।

१०–अनिर्वचनीयं प्रेमसुखम्।

अर्थ–ईश्वर प्रेम का सुख कहने से बाहर है (जिव्हा को क्या सामर्थ्य जो कह सके) (नारद)।

११–मूकास्वादनवत्। श्रीवल्लभाचार्यः।

अर्थ–गूंगे को जिव्हा के स्वाद की भांति है (जैसे गूंगा उस स्वाद को वर्णन नहीं करसकता)।

१२–सा कस्मै परमप्रेम रूपा।

अर्थ–ईश्वर के साथ सबसे बढ़कर प्रेम हि भक्ति का स्वरूप है। (श्री वल्लभाचार्यः)

१३–यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्तो भवति। (श्री वल्लभः)

जिस (भक्ति) को लभकर पुरुष सिद्ध होता है, अमृत होता है और तृप्त होता है।

१४—अमृतस्वरूपा च।

अर्थ—अमृत (मृत्युभयशून्य) होना हि भक्ति का लक्षण है।

१५—शान्तिरूपा परमानन्दरूपा च।

शान्ति और सब से ऊंचा आनन्द ही भक्ति का स्वरूप है
(श्री नारदः)

१६—यः श्रद्धते स भक्तिमान् भवति, स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभते।

अर्थ—जो श्रद्धा विश्वास रखता है उसे भक्ति प्राप्त होती है, वह ही प्यारे को लभते है, वही प्यारे को पाता है।

आदि २ कई आचार्य्यों के मत दिखाते हुए पीछे यह कहा है कि :—

ईश्वरे परानुरक्तिर्भक्तिः।

अर्थ—पुत्र कलत्र धन सम्पद् मान प्रतिष्ठा सब से बढ़कर ईश्वर में प्रेम ही भक्ति है। और जिन कर्मों के करने से उसमें प्रगाढ़ प्रीति उत्पन्न हो वही धर्म्म कर्म्म है और यह भक्ति निष्काम निरन्तर बढ़ने वाली और आत्म-प्रसाद देने वाली है। (श्री नारदः)॥

